International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 12 Issue 12, Dec 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

अनेकान्तवाद की सापेक्षिक अभिव्यक्ति

Dr Sipu Jayswal, Associate Professor
Janki Devi Memorial College, University of Delhi
Sir Ganga Ram Hospital Marg, Old Rajinder Nagar, New Delhi-110060

दार्शनिक विवेचना में हम सदैव अपने अनुभवों की व्याख्या करने को तत्पर रहते हैं। किसी निष्कर्ष पर पहुँच कर यह जिज्ञासा. क्षण भर को शान्त तो हो जाती है. परन्तु पुनः अपने ही निष्कर्षों को अपनी जिज्ञासा का विषय बना कर, फिर एक बार व्याख्याओं का क्रम शुरू कर देती है। व्याख्या निष्कर्ष का रूप लेती है और निष्कर्ष ज्ञान का, और ज्ञान हमेशा विषय की ओर संकेत करता है और साधारण बुद्धि, विषय को भिन्न–भिन्न दृष्टि से भिन्न–भिन्न रूपों में देखती है। इस प्रकार दार्शनिक विवेचना में ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी सदैव विद्यमान रहती है। विभिन्न सम्प्रदायों में भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से वस्तु के स्वरूप और सम्बन्ध पर विचार हुआ है। कहीं ज्ञान में ही ज्ञेय का समावेश हुआ है, तो कहीं ज्ञेय की निरपेक्ष सत्ता मानी गई है।

हमारा व्यावहारिक अनुभव ज्ञेय अथवा वस्तु की स्वतंत्र सत्ता को देखता है। पुनः किसी वस्तु विशेष के बारे में कोई जब कहता है कि यह सत् ही है और दूसरा कहता है असत् है। कोई कहता है. सामान्यात्मक ही है और दूसरा कहता है विशेषात्मक ही है। इस प्रकार वस्तु अपनी विभिन्नता में अथवा विरोधी धर्मों के साथ अलग अलग दृष्टिकोण में अलग अलग तरह से प्रस्तुत होती है। वस्तु स्वरूप के इन विभिन्न रूपों की दार्शनिक व्याख्या करने का प्रयास. सभी सम्प्रदायों में किया गया है। परन्तु फिर भी कुछ प्रश्न व्यवहारिक स्तर से उठकर दार्शनिक विवेचना का विषय बन जाते हैं। यथा क्या वस्तु के स्वरूप का एकान्तिक कथन वस्तु के स्वरूप सम्बन्धी समस्त अपेक्षाओं की व्याख्या करने में सक्षम है? अथवा क्या निरपेक्ष कथन वस्तु के स्वरूप की भ्रान्ति रहित अभिव्यक्ति करने में सक्षम है? प्रस्तुत लेख में मुख्यतः इसी प्रश्न पर विचार करने का एक छोटा प्रयास किया गया है। मैं यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि वस्तु के स्वरूप की तत्वमीमांसीय विवेचना, मेरा उद्देश्य नहीं है. सिर्फ उसकी भ्रान्ति रहित अभिव्यक्ति में निरपेक्ष और सापेक्ष कथन की योग्यता बताना ही मेरा उद्देश्य है। परन्तु यह बताने के लिए वस्तु के स्वरूप के सम्बन्ध में जो मान्यताएँ हैं. उसको संक्षिप्त चर्चा यथा स्थान अपेक्षित होगी।

भारतीय दर्शन के छः सम्प्रदायों में वस्तु के स्वरूप की विवेचना विस्तार से की गई है। जिसमें वस्तु की स्वतंत्र और वास्तविक सत्ता मानने वालों में जैन न्याय वैशेषिक, मीमांसा और सांख्य ही हैं। समय और विषय की सीमा को ध्यान में रखते हुए, मैं यहाँ सिर्फ न्याय–वैशेषिक के वस्तु के स्वरूप से सम्बन्धित निरपेक्षता की तुलना जैन दर्शन की अनेकान्तमक सापेक्षता से करन का प्रयास करूंगी। निष्कर्ष पर जाते हुए मेरा मत उन तार्किक सम्भावनाओं का ही अनुकरण करेगा. जो वस्तु के स्वरूप की भ्रान्ति रहित अभिव्यक्ति में सहयोग देगा। प्रस्तुत विषय की विवेचना का आधार जैन दर्शन के महान् विचारक आचार्य हेमचन्द कृत *अन्ययोगव्यवच्छेदिका* पर आचार्य मल्लिषेण सूरि द्वारा रचित टीका *स्याद्वादमञ्जरी* है। जैन दर्शन समस्त वस्तुवादी परम्परा में एक खास स्थान रखता है क्योंकि यह वस्तु के स्वरूप को अनन्तधर्मात्मक मानता है। जैसा उनके द्रव्य की परिभाषा से स्पष्ट है. कि द्रव्य रहित पर्याय किस ने किस समय और कहाँ देखा है? किस रूप में दखा है? और कौन से प्रमाण से देखा है? द्रव्य बिना पर्याय और पर्याय बिना द्रव्य के कहीं भी सम्भव नहीं। तात्पर्य यह है कि वस्तु स्वरूप द्रव्य दृष्टि से एक और पर्याय दृष्टि से अनेक है. और

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 12 Issue 12, Dec 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

द्रव्य तथा पर्याय एक–दूसरे से भिन्न नहीं है। इसलिए एकता के साथ–साथ पर्याय रूपी अनेकता ही वस्तु का वास्तविक स्वरूप है।

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद में वाच्य और वाचक का सम्बन्ध है। अनेकान्त रूपी वस्तु स्वरूप को अभिव्यक्त करने की निर्दोष भाषा प्रणाली का नाम स्याद्वाद है। जो सापेक्षता का द्योतक है। इस सापेक्षता के द्योतक स्याद्वाद की स्थापना. निरपेक्ष एकान्तिकमत के विरुद्ध जैन दर्शन ने किस प्रकार की है? इसकी विषयापेक्षा अनुसार चर्चा आवश्यक है।

आचार्य मल्लिषेण के अनुसार, 'वाच्यघटादि' के सामान्य विशेष रूप सिद्ध हो जाने से वाचक शब्दों को भी सामान्य विशेष मानना चाहिए। क्योंकि शब्द और अर्थ का तादात्म्य है। जैसे सभी प्रयुक्त शब्दों में शब्दत्व एक होता है अतः शब्द सामान्य है। दूसरी ओर शंख. धनुष. तीव्र, मन्द. उदात्त, अनुदात्त स्वरित आदि के शब्द भेद से शब्द अनेक हैं। ''जैसे 'क्षुर' कहने से सुनने वाले के कान और कहने वाले का मुख नहीं छिदता और मोदक कहने से तृप्त नहीं होते। इससे स्पष्ट होता है, कि श्वाचक से वाच्य भिन्न है। परन्तु मोदक शब्द से मोदक का ही ज्ञात होता है. अग्नि का नहीं इसलिए वाचक वाक्य से अभिन्न भी है।'' उपरोक्त विवेचना से एक बात स्पष्ट होती है कि वस्तु के स्वरूप सम्बन्धी कथनों में संदर्भों का मुख्य स्थान है। वस्तु के ठीक–ठीक स्वरूप का ज्ञान उसकी अपेक्षाओं पर निर्भर करता है। इन्हीं अपेक्षाओं को विस्तृत विवेचना जैन दर्शन के स्याद्वाद में हुई है। जो वस्तु के भ्रान्तिरहित अभिव्यक्ति के निर्दोष कथन का प्रयास करता है। जब वस्तु के साथ साथ उसके संदर्भों को समझना हो तो कथन स्वतः हो सापेक्ष हो जाता है। जैसा कि शब्द प्रमाण से भी स्पष्ट होता है। सैन्धव शब्द के उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। सैन्धव शब्द की ओर प्रवृत्ति उसके अभिप्राय पर ध्यान न रखने के कारण अर्थक्रियाकारित्व में सक्षम नहीं होगी। जैन आचार्यों ने वस्तु के स्वरूप में अनेकान्तता दर्शा कर उसके कथन की सापेक्षिक अभिव्यक्ति पर बल दिया है। यहाँ वाचक का वाच्य के अनुरूप निर्दोष कथन करने का प्रयास किया गया है। यहाँ प्रासांगिक है कि यदि द्रव्य को यह परिभाषण मान ली जाए तो उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर किस प्रकार सम्भव होगा?

हमारा अनुभविक ज्ञान इन्द्रिय सापेक्ष है। मात्र इतना ही नहीं. वह इन्द्रिय सापेक्ष होने के साथ–साथ उन कोणों पर भी निर्भर रहता है. जहाँ वस्तु देखी जा रही है। यदि हम उस कोण के विचार को अपने ज्ञान से अलग करते हैं। तो निश्चित ही हमारा ज्ञान प्रान्त हो जाएगा। एक गोल सिक्का अपने अनेक कोणों से हमें वृत्ताकर न लगकर अण्डाकार दिखाई देता है। विभिन्न गुरुत्वाकर्षणों एवं विभिन्न शारीरिक स्थितियों से एक ही वस्तु हल्की या भारी प्रतीत होती है। हमारी पृथ्वी, जब हम उसके गुरुत्वाकर्षण की सीमा से ऊपर जाकर देखते हैं, तो गतिशील दिखाई देती है। परन्तु यहाँ वह हमें स्थिर प्रतीत होती है। दूर से देखने पर वस्तु छोटी और पास से देखने पर बड़ी दिखाई देती है। इस प्रकार हमारा सारा आनुभविक ज्ञान सापेक्ष होता है। इन्द्रिय संवेदनों को उन सब अपेक्षाओं से अलग हटकर नहीं समझा जा सकता। अतः इन्द्रिय ज्ञान दिक्–काल और व्यक्ति सापेक्ष होता है। ऐसी स्थिति में हमें ऐसी कथन पद्धति की योजना करनी होगी. जो दूसरों के अनुभूत सत्यों का निषेध न करते हुए अपनी बात कह सके। हम अपनी ज्ञान को सीमितता के कारण अन्य सम्भावनाओं को निरस्त नहीं कर सकते।

पुनः निरपेक्ष ज्ञान अगर सम्भव मान भी लिया जाये तो भी निरपेक्ष कथन उसी प्रकार से सम्भव नहीं है। क्योंकि साधारणतः जो कुछ भी कहा जाता है. वह किसी न किसी संदर्भ में कहा जाता है. और उस सन्दर्भ में ही उसे ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। अन्यथा भ्रान्ति होने को सम्भावना रहती है। इसलिए जैन आचार्यों का कथन है कि जगत में जो कुछ भी कहा जा सकता है. वह सब किसी विवक्षा (इच्छा) या नय से गर्भित होता है। सर्वज्ञ की वाणी भी अपेक्षा रहित नहीं होती है। वक्ता का कथन समझने के लिए अपेक्षा का विचार आवश्यक है। इन्हीं अपेक्षाओं को

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 12 Issue 12, Dec 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

सप्तभंगी नयों में विस्तार से समझाया गया है। जैन विचारकों ने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ऐसी चार अपेक्षाएं मानी हैं।

वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान एवं उसकी अभिव्यक्ति सम्बन्धी अनेक समस्याओं के समाधान के लिए प्रत्येक प्रकथन के परिमाणक के रूप में 'स्यात् शब्द का प्रयोग किया गया है। जैन आचार्यों ने कहा है कि ''बहुआयामो जटिल तत्व की विवेचना बिना अपेक्षा के सम्भव नहीं है।'' आचार्य अमृतचन्द्र 'समयसार' की टीका में लिखते हैं कि ''अपेक्षा भेद से जो है वहीं नहीं भी है. जो सत् है वह असत् भी है जो एक है वह अनेक भी ह जो नित्य है वही अनित्य भी है।''

आचार्य हेमचन्द्र 'अन्ययोगव्यवच्छद्दिका' में निष्कर्ष लिखते है कि ''विश्व की समस्त वस्तुएं स्याद्वाद की मुद्रा से युक्त हैं. कोई भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता।'' स्यात् एक ऐसा शब्द प्रतीक है, जो एक ओर तो वस्तु के अनेकान्त होने की सूचना देता है। और दूसरी और अपेक्षा विशेष से एक विवक्षित (कहने की इच्छा) धर्म के प्रकाशन के साथ–साथ अविवक्षित धर्मों की वस्तु में उपस्थिति को सूचित भी करता है। अर्थात् यह बतलाता है कि विवक्षित धर्म के अतिरिक्त अविवक्षित धर्म भी वस्तु तत्व में अवस्थित है। आचार्य मल्लिषेण ने लिखा है कि ''स्याद्वाद में 'स्यात' शब्द एक अव्ययः है जो एकान्त का निराकरण कर अनेकान्त का प्रतिपादन करता है। स्यात् शब्द का वास्तविक अर्थ, आचार्य मल्लिषेण अनेकान्तता का द्योतक विवक्षा या अपेक्षा का सूचक, कथंचित् अर्थ का प्रतिपादक मानते हैं। साथ ही प्रकथन को निश्चित बनाने के लिए उन्होंने प्रत्येक प्रकथन में 'स्यात' के साथ 'एवकार' (हि) का प्रयोग किया है। जैसे 'स्यादस्त्येवघटः।'' और यह भी स्पष्ट किया है कि 'एवकार' यह द्योतित करता है कि जिस अपेक्षा से वस्तु में किसी धर्म का प्रतिपादन किया गया है. उस अपेक्षा से वह वैसी ही है। उसमें किसी प्रकार का संदेह आदि का अवकाश नहीं है।

वह सब विवक्षित पर्यायों, सामान्यों और विशेषों को अविवक्षित पर्यायों, सामान्यों और विशेषों से अलग करता है। इस प्रकार स्यात् पद के साथ एव शब्द के आ जाने से प्रकथन में निश्चियात्मकता आ जाती है। तथा 'स्याद' शब्द तद्विरोधी प्रकथन का व्यवच्छेदक बन जाता है। इस प्रकार स्याद पद का कार्य निम्नलिखित ह–

(1) वस्तु की अनन्ततधर्मात्मकता को सूचित करना।

(2) वस्तु में अपेक्षित धर्म का निर्देशन करना।

(3) एकान्तता का निषेध करना।

(4) कथन को सापेक्ष बनाना और तद्विरोधी प्रकथन का व्यवछेद करना।

'स्यात्' शब्द यह बताता है कि उद्देश्य के सम्बन्ध में जिस विधेय का विधान या निषेध किया गया है। वह अपेक्षाश्रित है। निरपेक्षता नहीं। स्यात् पद यह भी स्पष्ट करता है कि प्रकथन में उद्देश्य के केवल एक ही विधेय (धर्म) की अभिव्यंजना की गयी है। उसमें अवस्थित सभी भावात्मक अभावात्मक विधेयों की नहीं। जैसे 'स्यादस्त्येव घटः' में घट के मात्र अस्तित्व धर्म की अभिव्यंजना की गयी है। वह भी मात्र द्रव्यदृष्टि से, पर्याय आदि दृष्टि से नहीं। इस प्रकार श्स्यात् प्रकथन की सापेक्षता का प्रतीक है। स्यात् शब्द को परिमाणक के रूप में नयों में लगाकर वस्तु की सापेक्षिकता को किस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है? इसकी भी विस्तृत विवेचना स्याद्वाद में की गई है। जिसकी प्रसंगानुसार चर्चा यहाँ अपेक्षित है। वस्तु के स्वरूप के सम्बन्ध में कथन सामान्यतः तीन प्रकार से किया जाता है। अस्तित्व, नाअस्तित्व और अव्यक्तव्य। यहाँ तीन प्रकार के प्रश्न वस्तु के अस्तित्व के सम्बन्ध में किये जा सकतें हैं। जिसमें मुख्यतः प्रथम दो ही हैं। अव्यक्तव्य की स्थिति ज्ञान में न भी हो तो अभिव्यक्ति में कई पहलु इस स्थिति से गुजरते हैं।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 12 Issue 12, Dec 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

प्रतिपक्षी धर्मों का निराकरण न करते हुए वस्तु के अंश के ग्रहण करने वाले ज्ञाता का अभिप्राय नय है। तात्पर्य यही है कि विवक्षा अथवा अविवक्षा वाणी के भेद हैं। वस्तु के नहीं। वस्तु में तो अनन्त गुणों का तथा विरोधी प्रतीत होने वाले अनन्त धर्म–युगलों को भी अपने में धारण करने की शक्ति है। उनको एक साथ कहने का सामर्थ्य वाणी में न होने के कारण विवक्षा अथवा अविवक्षा तथा मुख्य और गौण का भेद पाया जाता ह। वादिदेव सूरि ने भी कहा है– ''श्रुतज्ञानप्रमाण से जाने हुए पदार्थों का एक अंश जान कर अन्य अंशों के प्रति उदासीन रहते हुए वक्ता के अभिप्राय को नय कहते हैं।'' नय विवक्षा वस्तु के धर्म का निश्चय कराने वाली होने से एकान्त है। प्रमाण–विवक्षा वस्तु के अनेक धर्मों को निश्चय स्वरूप होने से अनेकान्त है। प्रमाण और नय में उसी तरह का अन्तर है जिस प्रकार घड़े में भरा समुद्र का जल समुद्र नहीं है पर असमुद्र भी नहीं है।''उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के अनन्त धर्मों को समग्रता समुद्र है और क्रमपूर्वक एक–एक करके उसके धर्म का निरूपण किया जाना तय है। अर्थात् सम्यक् ज्ञान को प्रमाण और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहा गया है। स्याद्वादमञ्जरी में इसी बात की पुष्टि करते हुए कहा गया। है कि ष्वक्ता का अभिप्राय ही नय है।'' आचार्य सिद्ध सेन ने सम्मति प्रकरण में कहा है कि ''वे सभी नय मिथ्यादृष्टि हैं जो अपने ही पक्ष का आग्रह करते हैं। दूसरे का निषेध करते हैं। किन्तु जब वे ही परस्पर सापेक्ष और अन्याश्रित होते हैं तब सम्यक् तत्व के सद्भाव वाले अर्थात् सम्यक् दृष्टि होते है।'' इसी प्रकार आप्तमीमांसा में भी कहा गया है।

स्याद्वादमञ्जरी में कहा गया है कि वस्तुओं में अनन्त धर्म होते हैं। अतएव नय भी अनन्त होते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ऐसा लगता है कि स्याद्वात्वाद वस्तु के अनेकान्त धर्मों को कहने की पद्धति है। कहा भी गया है कि. अनेकान्तवाद वस्तुओं में अवस्थित विभिन्न धर्मो का सूचक है। और स्याद्वाद उनको अभिव्यक्त करने की भाषायी पद्धति। वस्तुओं में स्थित अनन्तः धर्म स्याद्वाद के माध्यम से हो मुखरोत होते है। आचार्य मल्लिषेण स्यादवाद और अनेकान्तवाद को एक ही मानते हैं। क्योंकि स्याद्वाद से जिस वस्तु का कथन होता है। वह अनेकान्तात्मक है और स्याद्वाद उस अनेकान्तात्मक अर्थ का सूचक है। इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य मल्लिषेण ने '' 'स्यात' शब्द को अव्यय कहा है। जो अनेकान्त का द्योतक है।'' जैन दर्शन के अनुसार जिस अपेक्षा दृष्टि को स्याद्वाद में इतना महत्व दिया गया है। वही समस्त दार्शनिक विवेचनाओं को भ्रान्तिरहित अभिव्यक्ति हो सकती है। क्योंकि जैन दार्शनिकों के अनुसार अधिकांश दार्शनिक विवादों, आलोचनाओं, प्रत्यालोचनाओं का मूल कारण ज्ञान एवं अभिव्यक्ति की इन सीमाओं की उपेक्षा कर अपने ज्ञान एव कथन को ही निरपेक्ष एवं पूर्णसत्य मान लेना है।

इसी एकान्तता के कारण ज्ञान दूषित बन जाता है। कहा गया है कि ''किसी भी एक शब्द या वाक्य द्वारा सारी की सारी वस्तु का युगपत् कथन करना अशक्य होने से प्रयोजन वंश कभी एक धर्म को मुख्य करके कथन करते हैं और कभी दूसरे को। मुख्य धर्म को सुनते हुए श्रोता को अन्य धर्म भी गौण रूप से स्वीकार होते हैं. उनका निषेध न होने पाये इस प्रयोजन से अनेकान्तवादी अपने प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् या कथंचित् शब्द का प्रयोग करते हैं।''

निष्कर्षतः एक बात, जो जैन दर्शन के उपरोक्त मतों स उभर कर आयी है। वह यह है कि समस्त एकान्तिक स्वयं ही एक– दूसरे का खण्डन करने में सक्षम हैं। ऐसे में ज्ञान और उसको भ्रान्तिरहित अभिव्यक्ति की कुछ हद तक सम्भावना जैन दर्शन की इन मान्यताओं से बनती है। व्यक्ति में ज्ञान दृष्टि के व्यापक होने से व्यक्ति समस्त वस्तुधर्मों का उसकी समग्रता में ग्रहण कर सकता है। परन्तु उसकी अभिव्यक्ति में फिर सारे भेद क्रमशः उभर कर सामने आते हैं। क्योंकि वाणी का स्वभाव ही ऐसा है कि वह क्रमशः ही शब्दों का निपात करेगी। और अन्तत धर्मात्मकता को बताने में उसके शब्द, दृष्टि भेद के कारण किसी एक दृष्टि से. एक समय में. एक ही धर्म को अभिव्यक्त करेंगे। परन्तु निरपेक्षतः उसके कथन से इन विविधताओं की सम्यक् व्याख्या में भ्रान्ति की सम्भावना बनी रहती है। परन्तु 'स्यात' शब्द के प्रयोग से कम से कम अन्तरविरोध की सम्भावना होती है।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 12 Issue 12, Dec 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

जीवन के विभिन्न पहल यथा नैतिक अभिव्यक्ति, सामाजिक अभिव्यक्ति, तात्विक अभिव्यक्ति, ज्ञान मीमांसीय अभिव्यक्ति आदि में जिस व्यवहारिक अनेकान्तता का अनुभव हम करते हैं। उसकी दार्शनिक विवेचना हम जैन–दर्शन में पाते हैं। अगर द्रव्य की उस परिभाषा को जिसमें जैन दर्शन का विश्वास है. मान लिया जाए तो. अनेकान्तवाद को भी तर्कशः मानना ही पड़ेगा। और उसकी विशुद्ध अभिव्यक्ति के लिए अर्थात् भ्रान्ति उपचार के लिए 'स्यात' शब्द के प्रयोग की आवश्यकता बताई गई है। वाणी में यह सामथ्य नहीं है कि वह वस्तु के पूर्ण स्वरूप को युगपत् कह सके। परन्तु कथनों के दुराग्रह का निवारण तो किया ही जा सकता। इसलिए सदैव न कह कर स्यात्सदैव का प्रयोग जैन दृष्टि के अनुसार वाचिक अहिंसा है।